अनूठा संसार

परदेस में देश की खुशबू

800 साल पहले संत फ़रीद जेरूसलम गए थे। वे वहां कुछ दिन रुके। उनकी यादों को सहेजकर वहां धर्मशाला और लॉज बना दी गई है...

जेरूसलम स्थित लॉज। इनसेट में इसके केयरटेकर शेख मुनीर और उनकी पोती निमाला।

हिंदुस्तान की धरती पर समय-समय पर बहुत से संत आए। उन्हीं में से एक थे सूफी संत शेख फ़रीदउद्दीन मसूज गंज-ए-शकर जिन्हें लोग बाबा फ़रीद के नाम से आज भी हिंदुस्तान, पाकिस्तान और अफगानिस्तान में संत के तौर पर पूजते हैं। वही बाबा फ़रीद बारहवीं शताब्दी में पंजाब में आकर बस गए थे। उसके कुछ समय बाद वह मक्का की यात्रा पर निकले तो ईसा की धरती जेरूसलम के रास्ते गुजरे थे और यहां कुछ दिन और रातें उन्होंने बिताईं। खास बात यह है कि हिंदुस्तानी सूफी संत बाबा फरीद से जुड़ी वो यादें 800 साल बाद भी जेरूसलम में मौजूद हैं। वे यहां कितने दिन रूके, यह तो कोई नहीं कह सकता लेकिन वहां रहने वाले मुस्लिमों ने बाबा फ़रीद की याद में भारतीय धर्मशाला, तीर्थ यात्रियों के लिए लॉज, प्रार्थना घर आदि का निर्माण कराया। 800 साल बाद भी यह धर्मशाला और लॉज बनी हुई और इसकी देख-रेख का काम आज भी हिंदुस्तानी परिवार के हाथों में है। वर्तमान में 86 साल के मोहम्मद मुनीर अंसारी इसकी देख-रेख में जुटे हैं। इस जगह पर आते ही हिंदुस्तानी पहनावे, खान-पान से हिंदुस्तानी तहज़ीब की खुशबू आती है। मुनीर के मुताबिक फिलिस्तिनियों ने सिर्फ बाहर के मुख्य दरवाजे की दीवारी गिराई है बाकी सब आज भी वैसा ही है।

1967 ***में इज़राइल आर्मी के रॉकेट हमलों ने इसे काफी क्षति भी पहुंचाई थी। फिर भी अंसारी यहां से नहीं गए।***

शख्सियत

रजनी कोठारी
(1928 से 19 जनवरी 2015)

साम्प्रदायिक राजनीति केवल धार्मिक कट्टरपन से ही पैदा नहीं होती। आधुनिक बाजारवादी तकनीकशाही राज्य भी साम्प्रदायिक रवैये को पानी देता है। यह राज्य बहुलताओं पर समरूपीकरण का पाटा चलाना चाहता है और इस काम में साम्प्रदायिकता से उसका गठजोड़ हो जाता है।

भारतीय लोकतंत्र के सिद्धांतकार

» अभय कुमार दुबे

साठ के दशक में भारतीय राजनीतिशास्त्र के क्षितिज पर रजनी कोठारी (1928-2015) के उदय से पहले सारी दुनिया में भारतीय लोकतंत्र को पश्चिमी लोकतंत्रों के अनुभवों की रोशनी में देखा जाता था। कोठारी इस रवैए को बदलने वाले पहले समाज-वैज्ञानिक थे। उन्होंने दावा किया कि भारतीय लोकतंत्र का विकास-क्रम ब्रिटिश या अमेरिकी मानकों के आधार पर निर्धारित नहीं किया जा सकता। चूंकि भारतीय समाज अलग किस्म का है, इसलिए उसकी राजनीतिक अभिव्यक्ति के रूप में उसका लोकतंत्र भी अपने विशिष्ट गुणों से सम्पन्न होगा।

1957 में रजनी कोठारी को संयोग से उन्हें भावनगर (गुजरात) में कांग्रेस के एक अधिवेशन को देखने का मौका मिला। यही वह चरम बिंदु था जब उन्हें लगा कि वे आत्मविश्वास के साथ अपने राजनीति-संबंधी विचारों का सूत्रीकरण करते हुए चालू बहस में हस्तक्षेप कर सकते हैं। नेहरू युग के आखिरी दौर में इकोनॉमिक वीकली (जिसे आज हम ईपीडब्ल्यू के नाम से जानते हैं) में प्रकाशित उनकी लेखमाला 'फॉर्म ऐंड सब्सटेंस ऑफ इंडियन पॉलिटिक्स' से ही उनके स्वतंत्र चिंतन और सिद्धांतीकरण की क्षमता के सुराग मिलने लगे थे। इन लेखों को पढ़ कर साफ लगता है कि कोठारी न तो मार्क्सवाद के सामने सिर झुकाने के लिये तैयार थे, और न ही गांधीवाद के सामने और न ही इन दोनों से मिलन से तैयार किए हुए गांधीवादी-समाजवाद के सामने। दक्षिणपंथी विचारधाराओं से तो उनका दूर का नाता भी नहीं था, लेकिन वे भारतीय मनीषा से अपरिचित नहीं थे। भारतीय समाज की परिवर्तनशीलता पर अगाध विश्वास रखते हुए उन्होंने उसके आधुनिकीकरण की प्रक्रिया पर अपनी अंगुली रखी और परंपरा के आधुनिक होते जाने के प्रामाणिक विवरण पेश करते हुए अपनी शाहकार कृति 'पॉलिटिक्स इन इंडिया' रची। 1969 में प्रकाशित उनकी यह रचना आज भी भारतीय राजनीति को व्यवस्थित ढंग से समझने का एकमात्र मॉडल मुहैया कराती है।

कोठारी का विमर्श हमें बताता है कि राजनीति में जातिवाद की परिघटना पर अफसोस करते रहने के बजाय हमें जातियों और आधुनिक संसदीय राजनीति की अन्योन्यक्रिया के ज़रिए जाति की संरचनाओं के बदलते रूपों पर अपनी निगाह टिकानी चाहिए। दलित और पिछड़े वर्ग की राजनीति के साथ लोकतांत्रिक विकास के सकारात्मक संबंध केवल इसी तरह से समझ में आ सकते हैं। इस व्याख्या को ही उनके द्वारा प्रतिपादित 'जातियों का राजनीतिकरण' के रूप में जाना जाता है। इसी तरह उनका एक आग्रह यह भी है कि साम्प्रदायिक राजनीति केवल धार्मिक कट्टरपन से ही पैदा नहीं होती। आधुनिक बाजारवादी तकनीकशाही राज्य भी साम्प्रदायिक रवैए को पानी देता है। यह राज्य बहुलताओं पर समरूपीकरण का पाटा चलाना चाहता है और इस काम में साम्प्रदायिकता से उसका गठजोड़ हो जाता है। कोठारी का कहना था कि बाजारवादी रवैया नैसर्गिक रूप से गरीबों और कमजोर वर्गों के खिलाफ होता है, क्योंकि यह नज़रिया 'छंटाई' के सिद्धांत पर चलते हुए ग्रोथ रेट के लिये अनुपयोगी समझे जाने वाले समुदायों को हाशिए पर धकेलता चला जाता है। ऐसी हर व्यवस्था गरीबों को विस्मृत करने पर आधारित होती है।

रजनी कोठारी का जन्म बर्मा में हीरे-जवाहरातों का व्यापार करने वाले परिवार में हुआ था। पिता और अन्य सभी परिजन चाहते थे कि रजनी के ज़रिए उनका वंश कम पढ़े-लिखे होने की परम्परा को लांघ जाए। रंगून में ही इसकी बुनियाद पड़ी। रजनी ने हमेशा प्रथम श्रेणी हासिल की। वे अंग्रेज़ी और गणित में विशेष रूप से प्रवीण निकले। भाषण देने में भी उन्हें हमेशा इनाम मिला। पिता ने अपने मुनीम को हिदायत दे रखी थी कि किताबें खरीदने के लिए बच्चे के पास धन की कमी नहीं पड़नी चाहिए। इस तरह रजनी को किताबों से जज़्बाती सहारा मिला और कक्षा में हासिल की गई सफलताओं से उपलब्धि की आनुषंगिक अनुभूति हुई। रजनी के सहयोगी विद्वान आशिस नंदी मानते हैं, 'रजनी का यह बचपन और खास कर किसी बौद्धिक विरासत या विचारधारात्मक माहौल के बोझ से न लदे होने ने उनकी मेधा के स्वतंत्र विकास में निर्णायक भूमिका निभाई होगी।'

मार्क्सवादियों और गांधीवादियों के बीच समान रूप से लोकप्रिय प्रोफेसर कोठारी विद्वान होने के साथ-साथ कुशल संस्था-निर्माता भी थे। स्वतंत्र भारत में समाज-विज्ञान अनुसंधान का ढांचा खड़ा करने में उनकी उल्लेखनीय भूमिका थी। उन्होंने सीएसडीएस की स्थापना की जो आज देश का प्रमुख शोध संस्थान है।

• लेखक सीएसडीएस में भारतीय भाषा कार्यक्रम के निदेशक हैं और रजनी कोठारी के सहयोगी रहे हैं।

राजनीतिक चिंतक और समाज वैज्ञानिक
रजनी कोठारी पर विशेष ...

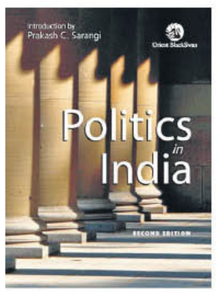

1969 ***में प्रकाशित उनकी रचना पॉलिटिक्स इन इंडिया आज भी भारतीय राजनीति को व्यवस्थित ढंग से समझने का एकमात्र मॉडल मुहैया कराती है।***

कोठारी का विमर्श हमें बताता है कि राजनीति में जातिवाद की परिघटना पर अफसोस करते रहने के बजाय हमें जातियों और आधुनिक संसदीय राजनीति की अन्योन्यक्रिया के ज़रिए जाति की संरचनाओं के बदलते रूपों पर अपनी निगाह टिकानी चाहिए।